TEXT PROBLEM
WITHIN THE
BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY

OU_182590

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.08|T16H Accession No. G.H.882

Author टंडन, लक्ष्मीनारायण।

Title हृदय-ध्वनि। 1946

This book should be returned on or before the date last marked below.

हृदय-ध्वनि

…………

अनुभूतिप्रधान कविताओं का संकलन।

…………

लक्ष्मीनारायण टंडन, 'प्रेमी', एम० ए०, सा० र०

प्रकाशक—

विद्यामंदिर, रानीकटरा, लखनऊ।

प्रथम संस्करण, १०००

जूलाई, १९४६

मूल्य, सवा रुपया

मुद्रक—

पं० गिरजाशङ्कर शुक्ल, देवता प्रेस, लखनऊ।

… … … … …

जिसने भावनायें दीं

उसीको

सादर सप्रेम सहर्ष

… … … … …

अपनी बात

आज का 'कल' कल का 'परसों' हो जाता है—इसी कठोर किन्तु सत्य नियम से बँधकर संसार अपना कार्य करता रहा है और भूत काल ही का कुछ समय के पश्चात् नामकरण 'अतीत' हो जाता है। हमारा वर्तमान हमें इतना मधुर नहीं लगता जितना कि हमारा 'भूत'। कारण स्पष्ट है—'वर्तमान' कल्पना के क्षेत्र से कुछ दूर पड़ता है और अतीत में कल्पना का समन्वय होना अधिक स्वाभाविक है। अस्तु, हम निश्चयतापूर्वक कह सकते हैं कि अतीत की सभी स्मृतियाँ सुखद प्रतीत होती हैं।

अपने गत जीवन और व्यतीत काल की मधुर स्मृतियाँ किसे कल्पना-लोक के आनन्द में निमग्न नहीं कर देतीं? कवि-हृदय अपने भूत और वर्तमान का एकीकरण करके अपनी मूक भावनाओं को राग और रूप दे देता है। मैंने भी यही किया है। मेरी कविताओं में कल्पना का ढूँढ़ना मृग-मरीचिका होगा। वह प्रायः अनुभूति-प्रधान हैं; उनमें आपको मेरा हृदय मिलेगा, मस्तिष्क नहीं—यह बात मैं स्वयं पहले ही से मंजूर किये लेता हूँ।

एक कथा है—एक शागिर्द एक शायर के पास गया—कहा, 'आप मेरे उस्ताद हो जाइये।' उस्ताद ने कहा—'जाओ बेटा! पहले आशिक़ बन आओ।'

इस कहानी का सीधा-साधा अर्थ यह है कि पवित्र प्रेम, दुख उठा कर प्राप्त अनुभव, जीवन के लिए परमावश्यक हैं। प्रेम एक सात्विक भाव है, एक स्वर्गीय भाव है। पता नहीं, लोग क्यो इसके मनमाने अर्थ लगाते हैं।

मेरी कविताये हृदय-वाद के अन्तर्गत हैं। अधिकतर कविताये शृंगारिक हो गई हैं। किन्तु कला अपने सच्चे रूप में नग्न होती ही है। किसी अन्य वाद का पुट इसमें नही है—वैसा मुझे रुचिकर भी नहीं होता। साँवले स्वाभाविक रूप पर जबरदस्ती पाउडर पोत देने से उसके नैसर्गिक लावण्य में कमी आ जाती है—यही मेरा कविता के सम्बन्ध में विचार है। इसमें यथार्थवादिता मिलेगी और यही इसकी विशेषता कहिये। काव्य एक ललित कला हैं और उपयोगिता के तराजू में तौल कर कविता के मूल्य को क्यों कम किया जाय?

मुझमें कवि बनने की क्षमता नहीं है, तो भी मैंने कविता करने का साहस किया है, कविता करने की धृष्टता की है। इसका भी एक कारण है, सीधा साधा और सत्य। अपनी बात सभी कहना चाहते हैं, क्योंकि इससे उनकी आत्मा को शान्ति मिलती है। यह बात स्वाभाविक है और यदि मैं भी अपने को इस नियम के अपवाद-रूप में नहीं देख पाता तो मैं भी क्षम्य हूँ।

यदि कोई मेरी बात सुनता है तो वाह वाह, नहीं तो कहने वाला तो कहेगा ही–सुनने वाला नहीं सुनता, न सुने। कहने वाले को आत्म-सन्तोष तो होगा।

यह ग्रन्थ मेरा प्रथम प्रयास है और इस संकलन में आपको जो

मेरी हृदय-ध्वनि सुनाई देगी वह मेरी भावनाओं की सच्ची झलक होगी।

दीर्घ काल में जीवन की परिस्थितियाँ वर्षा के बादलों की भाँति अनेक रंग बदलती गईं। सुख को दुख, आशा को निराशा, सरस आदर्शवाद को कठोर प्रत्यक्षवाद दबाता गया, दबाता गया। जो मैं कल था आज नहीं हूँ।

विभिन्न समयों पर की हुई कविताओं का यह संग्रह है। बात स्पष्ट है कि उनकी भाषा, भावों और भावों को व्यक्त करने की रीति में भिन्नता होगी ही। किन्तु यह जानते और समझते हुए भी मैंने ऐसा किया है। इस संकलन की कवितायें भिन्न-भिन्न समय में भिन्न भिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हो चुकी हैं।

साधुवाद मिलने की आशा तो मुझे स्वप्न में भी नहीं है; हाँ समालोचकों की मीठी घुड़कियाँ यदि मेरे भविष्य के मार्ग को निश्चित करने में सहायक हुईं तो अहो भाग्य।

अपनी बात समाप्त करने के पूर्व मैं सुहृदवर मित्र श्री प्रेमनारायण टंडन, एम० ए०, साहित्यरत्न को नहीं भूल सकता प्रस्तुत ग्रन्थ उन्हीं की देख-रेख में छप रहा है—मै तो बीमार पड़ा हूँ मुझमें उनमें कोई भेद नहीं है, अतः कृतज्ञता प्रकाश का प्रश्न ही, नहीं उठता।

प्रेमी कुटीर, लखनऊ]

लक्ष्मी नारायण टंडन, 'प्रेमी'

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
प्रकृति-पुरुष	९
जीवन	१३
भाव-रूप	१४
मेरी	१५
उलझन	१८
किसी से	२१
सुजन	२२
देवि	२३
स्वप्नागमन	२५
जीवन का रुख	२८
आदर्श (क)	३१
आदर्श (ख)	३२
आँसू	३३
होली के उपलक्ष में	३६
मैं	४२
आकुल अंतर से	४५
नारी	५०
मानव	५६
विछोह पर	५८
तितलि के	६२
मैं प्यासा हूँ	६७
निराश हृदय में	७१
चित्रकार के चित्र में	७३
साकी	७६
सुख ?	८१
रुदन गान	८४
पथिक से	८७
मातृ-हीन	९१
ओ निठुर	९४
बलिदान करो	९७
चिर-विदा	१००

※ प्रकृति-पुरुष ※

मैं ही निर्मित हूँ, मैं ही निर्माता हूँ,
मैं प्रकृति—पुरुष परमेश्वर कहलाता हूँ।

मैं निशानाथ, मैं ही तारक—मंडल हूँ,
मैं मलयानिल, मैं अचर बवंडर—दल हूँ,
मैं प्रकृति—नटी का शुभ्र सुहाग अचल हूँ,
मैं बड़वानल—अविरुद्ध—रूप पाता हूँ,
मैं प्रकृति—पुरुष परमेश्वर कहलाता हूँ।

मैं हूँ बिजली की कड़क, घोर घन गर्जन,
मैं हूँ जल—कण का नभ में आत्म विसर्जन,
मैं तिमिराच्छन्न प्रदेश—वक्ष का तर्जन,
घन-प्रलय-युद्ध में असि मैं चमकाता हूँ,
मैं प्रकृति—पुरुष परमेश्वर कहलाता हूँ।

मैं दिवानाथ—दर्शन ही से खिल जाता,
फिर नश्वरता को देख स्वतः मुरझाता,
मैं लोल लहरियों से हूँ होड़ लगाता,
आतप—तप—वारण को गोता खाता हूँ,
मैं प्रकृति—पुरुष परमेश्वर कहलाता हूँ।

मैं सरस कुमुदनी—वदन—म्लानता हरता,
मैं सुधा वनस्पति-संकुल में हूँ भरता,
मैं सरिता—वक्षःस्थल पर खेला करता,
मैं क्रीड़ामय, वर विरत बना जाता हूँ,
मैं प्रकृति—पुरुष परमेश्वर कहलाता हूँ।

मैं ही हाला हूँ, मैं ही स्वर्गिक प्याला,
मैं ही पीनेवाला, मैं साक़ी—बाला,
मैं ही मधु—घट हूँ मैं ही हूँ मधु-शाला,
मैं ही मस्ती का संदेशा लाता हूँ,
मैं प्रकृति—पुरुष परमेश्वर कहलाता हूँ।

शाखा-स्थिर हो मैं पंचम स्वर से बोला—
'पी कहाँ ?' बोलकर निज अंतस्तल खोला,
मैं विहँग—वर्ग का प्रतिनिधित्व ले डोला,
नीरव निशीथिनी को मैं अपनाता हूँ,
मैं प्रकृति—पुरुष परमेश्वर कहलाता हूँ।

मैं केकी—गण का सौम्य सुरंजित नर्तन,
जलधर ही के अनुरूप विशद परिवर्तन,
विविधा प्रतिमाओं का मैं ही संघर्षण,
मैं अस्थिर को थिर, थिर को बिचलाता हूँ,
मैं प्रकृति—पुरुष परमेश्वर कहलाता हूँ।

मैं ही श्रोता, मैं ही हूँ कहनेवाला,
मैं यौवन मत्त, अधीर विदग्धा बाला,
अनुभव-सशक्त, बल-त्यक्त, वृद्ध-गुण-माला,
मैं ही भिक्षुक—निर्धन, मैं ही दाता हूँ,
मैं प्रकृति—पुरुष परमेश्वर कहलाता हूँ।

मैं हूँ युग-युग की असफल प्रेम-कहानी,
मैं हूँ निःश्वास, निपात, आर्त्ततर बानी,
मैं नमित, विसूरित, गहन अश्रु का पानी,
मैं चिर वियोग के रँग में रँगराता हूँ,
मैं प्रकृति—पुरुष परमेश्वर कहलाता हूँ।

मैं मत—मतादि की दुखमय ठेलाठेली,
आकर—रहित भी, भी हूँ नवल नवेली,
बेबूझी जग की अब तक एक पहेली,
मैं पाप—पुण्य—यावज्जीवन—नाता हूँ,
मैं प्रकृति—पुरुष परमेश्वर कहलाता हूँ।

मैं मंदिर, मसजिद, गिरजे में, घर-बाहर,
मैं अवनी-पति, प्रोहित, मंत्री, चर-परिकर;
मैं जीवन-मरण-रहस्य हास्य दुख दुखकर ।
उत्थान—पतन का दृश्य न ! सरसाता हूँ ?
मैं प्रकृति—पुरुष परमेश्वर कहलाता हूँ ।

मैं ही साधन हूँ मैं ही हूँ शुभ योगी;
मैं ही हूँ राजस भोग स्वयं मैं भोगी;
मैं रोग निदान सुऔषधि मैं ही रोगी;
मैं ही सुर-गायन और स्वयं गाता हूँ;
मैं प्रकृति—पुरुष परमेश्वर कहलाता हूँ ।

मुझको क्यों व्यर्थ पुकार रहे क्रन्दन में;
'प्रेमी' क्यों विस्मृति कर बैठे स्पंदन में;
मैं सर्व ठौर, मैं सर्वकाल वंदन में;
मैं धरकर नाना रूप यहाँ आता हूँ;
मैं प्रकृति—पुरुष परमेश्वर कहलाता हूँ ।

ओ पंच-तत्त्व-मिश्रण ! न नाश मम होता;
मैं केवल प्रस्तुत जीर्ण रूप निज खोता;
प्रत्यावर्तन का मंत्र—बीज नित बोता;
मैं आदि मध्य अवसान पिता माता हूँ;
मैं प्रकृति—पुरुष परमेश्वर कहलाता हूँ ॥

* जीवन *

सारहीन नीरव यौवन;
सुन्दरता का निधि जीवन !

विकसित पुष्पों के पराग का;
सौरभ-मय नित अंग राग का;
भाव जगत के मधुर राग का;
प्रकृति-नटी के शुभ सुहाग का;

बना हुआ है मेरा मन;
कर्म—क्षेत्र में करता रण।

सुकृत गुणों का मर्मस्थल;
सुदृढ़ सुरक्षित अति निश्चल;
मित्र—गणों का पुण्यस्थल;
पूर्व जन्म का सिंचित फल;
करता हूँ तुमको अर्पण;
'प्रेमी' मैं निज तन मन धन ।।

* भाव--रूप *

भाव का नव रूप देखा।
किस शिशिर के रोष से तप कर बनी यह रूप रेखा ?

इस परागासक्त मधुकर का पता कैसे बताऊं ?
इस सुमन के मौन मन की मैं व्यथा कैसे सुनाऊं ?
श्रान्त जीवन—नीड़ चिर-विश्रांति का अनिवार्य लेखा।
भाव का नव रूप देखा॥

हो चुकी है बात स्मृति से दूर भूली-सी पुरानी;
कसक की अब रह गई है शेष नीरव कटु कहानी।
किन्तु 'प्रेमी' क्यों न जाने व्याप्त चिर उन्माद पेखा।
भाव का नव रूप देखा॥

* मेरी *

परिचय है संक्षिप्त यही अपनी—हा ! हुई बिरानी का;
यही सार है बस मेरे जीवन की करुण कहानी का।
भय—आपूरित विकलित जग की व्यथा-कथा सुनते-सुनते;
यौवन के पहले प्रभात में शीश स्वयं धुनते-धुनते।

आशा का उद्यान खिला था प्रेम पुष्प चुनते-चुनते;
मै आ पहुँचा रश्मि-राशि-मिस अविरल गुण गुनते-गुनते।
आँख उठाई जो ऊपर तो थी यौवन की दोपहरी;
हृदय और मस्तक में मेरे घूम रही प्रिय—स्मृति—प्रहरी।

मैं अल्हड़ माली न मुझे था हार गूँथने का कुछ ज्ञान;
कोमल हृदय कुसुम का कैसे बेधूँ था इसका भी ध्यान।
छिदा हुआ है उर अपना यह था मुझको अनुभव आधार;
सोच-सोच कर अस्तु किया नव अश्रु—हार मैंने तैयार।

हुआ इधर सम्पूर्ण ध्येय तो था जीवन का सायंकाल:
चुपके-ही-चुपके पग धरता पीछे से आ पहुँचा काल।
मुझे तनिक था ज्ञान नहीं मैं था निमग्न प्रिय चिंतन में:
पुष्प और कर की माला पहनाऊंगा आलिंगन में।

था विचार कर रहा इधर प्रिय को माला पहनाने का:
काल कर रहा था प्रबंध पर मुझे शीघ्र ले जाने का।
दृष्टि फिरी तो मैंने देखी अंतर्ज्वाला फिर भारी:
भड़क उठी थी लगी समय पा अंतस्तल की चिनगारी।

मैं कहता था एक बार तो अश्रु—हार पहनाने दे
वह कहता था—भूल-भूल अब उन बातों को जाने दे।
बीत गया दिन इस विवाद में फैली रात सर्वव्यापी;
फिर मैंने भी बेमन से उस जग की पगडंडी नापी।

क्षण-भंगुर जग के अस्थिर जीवन में आशा बड़ी-बड़ी;
करते समय भूल जाता है जन निज अंतिम हाय घड़ी।
स्नेह-सुधा सिंचित धारा थी जिसकी वह स्वर्गिक मुसकान;
किया विदेह पूर्ण ही जिसने बेध दिये थे मेरे प्राण।

उसके कोमल बाहु-पाश में आलिंगन-चुम्बन होगा;
सुखकर बातें रंगरेलियाँ प्रियतम-प्रिया-मिलन होगा।
जहाँ बह रहा था कल आशा का झरना अविरल झर-झर;
वहाँ अश्रु टप-टप गिरते रहते हैं निशिदिन आठ पहर।

शस्य-श्यामल भू आशा की अब नीरस मरु-भूमि बनी;
भाग्य-विधाता निठुर हुआ है सूम हुआ है प्रेम-धनी।
अंतस्तल के अवशेषों को एकत्रित करता जग आज;
एक 'कहानी' रह जाती है सजती है जो स्मृति का साज।

सुनते-सुनते करुण कहानी जाते हैं—लाचारी है;
कोई कल चल दिया किसी की आज हुई तैयारी है।
तुम भी आभारी होना देवी ! 'प्रेमी' आभारी है;
अच्छा छोड़ कहानी जाता आई मेरी बारी है।

* उलझन *

अहा ! हृतन्त्री की झंकार,
समझ आता न भाव का सार ।

किसी वन देवी का अह्वान,
पतित जीवन का या उत्थान,
या कि सुन्दर अतीत का गान,
सुखाशा की मधुमय मुसकान,
द्रवित हिय की या उग्र पुकार,
समझ आता न भाव का सार ।

दीन को है वसुधा का दान,
मरुस्थल में जीवन-सिंचान,
यथा भावों की एक उड़ान,
प्रथम प्रेयसि का या सन्मान,
मिलन के चुम्बन का भण्डार,
समझ आता न भाव का सार ।

वायु मलियागिरि से परित्यक्त,
पुष्प अभिराम पराग अशक्त,
या कि निज रूप गन्ध अनुरक्त,
कली पर; भ्रमित्त भृङ्ग सा भंक्त,
झुका माधुर्य सौम्य के भार,
समझ आता न भाव का सार।

माधुरी-मूर्ति सुरा का पान,
हृदय-भेदी स्वर का संधान,
भैरवी की या सुमधुर तान,
विकल करके जैसे निज प्रान,
बना दे पागल सा संसार,
समझ आता न भाव का सार।

उनींदी पलकों के पट आय,
विभव मिस आँखें रहे छिपाय,
भ्रमर सी बन्द हुईं निरुपाय,
दया ने ठंडी खींची हाय,
अरी करुणे; नीरव उद्गार,
समझ आता न भाव का सार।

न है सरिता का कल-कल नाद,
न है दीनों का मौन विषाद,
किसी पागल का नहीं प्रमाद,
प्रेम की प्रतिध्वनि का उन्माद,
सुजीवन का सुन्दर अभिसार,
समझ आता न भाव का सार।

अश्रु के 'प्रेमी' बिन्दु विशाल,
पिरोते हैं मित मुक्ता-माल,
संजोते हैं उपहार संभाल,
डालने को प्रिय के जयमाल,
कहें क्यों ? अतः-अर्थ विस्तार,
समझ आता न भाव का सार।

——०——

किसी से !

अपनी साध मिटाने को कर एक जगत निर्माण;
तब मन बहलाने को उसमें फूँक दिये फिर प्राण ।

लगी फैलने हरियाली तब जब प्रति ओर अनन्त;
उसी समय जाने क्यों तुमने किया प्रलय सा अन्त ।

अनजाने ही हाय ! कर दिया किसी हृदय को चूर;
मन मसोस कर सिमिट किसी का गया सुभाव मयूर ।

हुआ तुम्हारा खेल किसी के अरमानों का खून;
श्रद्धा हेतु चढ़ेंगे केवल स्मृति-चिर-सरस-प्रसून ।।

* सुजन *

उनकी 'विस्मृति' में निवास करती है मम शुभ 'आशा'
मेरे 'सुख' का है प्रतिबिंब 'विकलता,' 'घोर निराशा'।
मेरी इच्छाओं की पूर्ति हुई उनके मर्दन में,
मेरे जीवन का सुपराग उड़ा बस निर्जन बन में।

मेरी 'आह' सदा से थी सुन्दर अनुपम मम 'गायन',
अश्रु-रूप में हुआ सदा ही 'प्रेमी' मम पारायन।
विरह-वेदना तत्त्व सारमय थी मेरे 'सुहाग' की,
एक शेष लय रही व्याप्त मम उखड़े शुष्क राग की:—

"धैर्य, शान्ति, सन्तोष हृदय में भर शुभ मार्ग दिखा दे,
भक्ति-भाव लहरा, सुप्रेम की ताल कृपालु! सुना दे।
मैं उनको निःस्वार्थ भाव से, कैसे जपूँ, जता दे,
प्राणोत्सर्ग सुजन पर कैसे हो, हे देव! बता दे॥"

* देवि ! *

देवि प्रियतमे ! भावोत्पादक ! सरस हृदय-धन ! जीवन-प्राण !
स्नेह-सुधा की अविरल धारा ! मेरी अपनी ! विस्तृत त्राण !
नीरस जग की सार सुशीले ! श्याम हृदय की अरुणोदय !
तिमिर निराशा की हे आशे ! व्यथित जीव की भाग्योदय !

सुखमम धनमम बलमम नयमम ज्ञान, बुद्धिमम प्रियतम शांति!
तुझको पाकर करुणा-प्रतिमे ! नश्वर होती है मम भ्रान्ति !
मुझ पागल की 'होश' सुघरवर ! अन्धकार की दीपक-ज्योत !
जग की नव-नव-गुण-गण-गरिमा ! भवसागर तरने की पोत !

एक शक्ति तू है वह जिससे अब तक ठहरे हैं मम प्राण,
अन्तस्तल की मधुर वेदना ! मुझ 'खोए' की पुष्ट प्रमाण !
प्रेम-मार्ग दिखलाने वाली ! आशा की मधुमय मुसकान !
जीवन व्यर्थ बनाया तूने ध्येय-युक्त दे ज्योति महान् !

ओ मम नीरवता की मृदु कम्पित गुंजार ! देवि, मम शक्ति !
मम अघ दुर्गुण हित ए चण्डी ! 'प्रेमी' की ओ नवधा भक्ति !
मानस-हिय की सुप्त रागिनी ! मेरे जीवन की मृदु गीत !
सदा ध्यान में बसनेवाली ! हृदय हारिणी ! गेय ! सुमीत !

तेज अंशुमाली का लेकर नवल कुसुम की कोमलता,
हिय लेकर मधुकर का प्रियतम ! चंचरीक की चंचलता.
चंद्रदेव की शीतलता लेकर जलधर की वाचलता,
सुन्दरता लेकर मयूर से नव-नलिनी की मंजुलता,

गुण हंसों का, पिक का कंठ. लिया है दर्द पपीहे का,
अवनी-तल का ले स्वभाव निर्माण हुआ मम प्रिय का।
विधि ने निज कर से हैं ढाले अंग-अंग—वर्णन है शान्त—
जग नन्दन-कानन करती हो, ज्योर्तिमय ! मम धीरज-प्रान्त !

हूँ धन हीन पुजारी तुमको प्रेम, हृदय ही का उपहार,
दे सकता हूँ बोलो, देवी ! बोलो—क्या होगा स्वीकार ?

* * *

※ स्वप्नागमन ※

भावनायें थीं रहीं दह ।
आज आये स्वप्न में वह ॥

आज गृह मेरा परम पावन मु-आलोकित हुआ है,
आज मम प्रति रोम का भी स्राव अति परिमित हुआ है;
पास रहकर भी सखी ! वह दूर, बिल्कुल दूर मुझसे,
कुछ खिंचे से रह रहे हैं जानकर भरपूर मुझसे ।
मै रही हूँ और यह सह ।

क्यों पधारे और कब ? यह रही अब तक है पहेली,
वेदना को दूर मम या तीव्रतर करने सहेली ।
आज जल में मीन प्यासी, आज आशा में निराशा
भावनायें घुट रही हैं बनाकर मुझको तमाशा ।
मति रही इसमें सतत बह ।

भागती मैं निठुर पीछे और वह सखि ! दूर मुझसे,
छिप रहे हैं आज मेरे हृदय को कर चूर, मुझसे;
चाहती हूँ मैं लिपट कर आज उनको प्यार कर लूँ।
चाहती उजड़े हृदय का, हाय ! नव-शृङ्गार कर लूँ।
और अपनी बात हँस कह।

वेदना उनमें भरी है या घृणा की रूप-रेखा ?
समझ पाती मैं न प्रिय-मुख-भाव का अस्पष्ट लेखा ;
आज चिर-परिचित-सुजन को हाय ! मैं अनजान पाती।
फटी जाती वेदना से हाय अलि ! यह आज छाती।
बात आती याद रह रह।

आज जीवन व्यर्थ सा है, भार सा है रिक्त, सूना,
भर गया मस्तिष्क में है प्रथम झंझावात दूना ;
आज नीरसता हमारे क्षीण जग में है समाई,
जान पड़ता है अलौकिक वस्तु कोई है गँवाई।
मैं सकूँ क्योंकर उन्हें गह।

छिनी जाती है हमारी परम-निधि-सी वस्तु कोई,
खो चुकी हूँ शेष धीरज, व्यग्र हो मैं आज रोई।
व्यर्थ सा मम शून्य-यौवन आखिरी मंजिल दिखाता,
समय से पहले बुढ़ापा देखता मम ओर आता।
दुःखदाई बात है यह।

एक टीसन मूक रह रह कर हृदय में आज उठती,
और वाणी से परे हो जो विकलता साज उठती ;
पूर्व-स्मृतियाँ नित्य क्रम-क्रम ठेस खाती और गिरतीं,
और भूली-सी कहानी में नये फिर रंग भरतीं।
वेदना-मिश्रित-हृदय लह।

आज प्रिय क्या ? हाय ! प्रियको ? मैं न इसको समझ पाई,
दुख बढ़ाने के लिये ही क्या हुई उनकी आवाई ;
व्यर्थ ही "प्रेमी" सभी सोये हुए अरमान जागे,
चल रही हो 'नियति' जब मेरे सुखों के हाय ! आगे।
रूप ले अपना भयावह।
आज आये स्वप्न में वह॥

※ जीवन का रुख ※

मेरे यह दर्दीले गाने,

यही मीत असमय के मेरे समझे, बूझे, जाने।
किसका किस पर अधिकार यहाँ—
चिर-जीवित किसका प्यार यहाँ—
है विजय, दिवस दो चार यहाँ,
फिर वही सदा की 'हार' यहाँ,
परिचय-प्रथम प्रणय के फिर बन जाता ताने बाने।

मैं एकाकी, निस्तब्ध निशा,
घनघोर मार्ग, अनजान दिशा,
पथ कठिन नया गलियारा है,
पंथी दिन भर का हारा है,

किसका होकर चलना होगा विस्मृति में बँध जाने।
दो दिन हँस जीवन भर रोना,
सुख क्षण भर दुख नित प्रति ढोना,
निज को खोकर सब कुछ खोना,
खारी-जल से गात भिगोना,
फिर-फिर जाते ये चिर-व्रण से सुखद वेदना लाने।

मुझको संगी छोड़ चुके हैं,
अपने सब मुँह मोड़ चुके हैं,
मैं हूँ शून्य, जगत है सूना,
मेरा 'घाव' काल का 'चूना',
'प्रेम' नाम से परिचित हूँ, पर भूल गया हूँ 'माने।

मैं बिगड़ा तो सँभला कोई,
हँसा एक तो मचला कोई,
सब हैं 'अपने' ही में खोए,
सब 'अपने' में हँसते-रोए,
किसे समय है जो मेरे दुख को समझे, पहिचाने!

अब तो बस जीवन है ढोना,
अब केवल रोना ही रोना,
जिसमें थी सब शान्ति समाई,
उससे अलग अशान्ति कमाई,
हृदय मलिन पर हरित सदा रहते ये घाव पुराने।

'प्रेमी' व्यथित-हृदय के ताने ॥

⁂

* आदर्श (क) *

देवी ! निज अवगुण्ठन खोलो,

बन्द कराकर मुख मम प्रेयसि ! तुम ही मुख से बोलो ।
हास्य-अश्रु की माया-ममता से तुम निशि-दिन खेलो,
तरल साम्य में जीवन-तरनी को अब बढ़कर खे लो ।

मुकुलित कुसुम स्वतः मुरझाता है-कुछ इससे लेलो,
गन्ध, पराग, बीज, रस, स्मृति का भार उठा कर ठेलो ।
इस अपने 'प्रेमी' में अनुदिन अपनापन अब मेलो,
दुख का अपनाना ही सुख है यदि तब दुख-सुख झेलो ।

* आदर्श (ख) *

असित नैराश्य-निशा के तले,

अम्बर के आलोक-पूर्ण नग हैं अतीत से पले।
अमित प्रभाकर-कर छूते ही शून्य दिशा को चले,
फिर सीमित आलोक पार कर भी रहते ही बले।

सरस अतृप्त अङ्क में प्रियतम ! लगते हो तुम भले,
उतना ही अनिमेष सौम्य जितने न ! गये तुम छले।
कहला कर 'प्रेमी' फिर अणुभर भी टाले से टले,
यदि–फिर इस प्रत्यावर्तन में गये स्वयं तुम छले।।

※ आँसू ※

दीन दुखी हूँ, अस्तु अश्रु ही
का उपहार पठाता नित,
व्यथित हृदय के भाव
अश्रुओं ही के भार दबाता नित।

अन्तर अन्तस्तल को धोते
रहना नित, क्या सुन्दर लक्ष !
दिव्य रूप से जग में आते—
करुणा की मूरत प्रत्यक्ष !

हिय में बँधी भावनाओं का
अनुपम दर्श कराते हो,
सारहीन जीवन का या
नीरव इतिहास बताते हो !

अथवा घोर निराशा के हो
तुम बतलाओ रूप विराट ?
दयाभाव के खोल रहे हो
मुँदे हुए या स्वेत कपाट ?

गूँथ रहे मोती की लड़ियाँ—
किसका साज सजाओगे ?
केवल व्यर्थ प्रयास रहेगा,
या कुछ फल भी पाओगे ?

अथवा क्षण भर जीवित रहकर
निज अस्तित्व मिटाओगे ?
अपनी स्मृति में अन्य अश्रुओं
का या तार बँधाओगे ?

द्रवित हृदय की बूँदों का
चंचल पलकों पर सुन्दर हास्य !
मौन निश्वास सुसहचर लेकर
नृत्य थिरककर देव-उपास्य ।

सुदृढ़, सुरक्षित कोष छोड़कर
बोलो, बोलो, क्यों आये ?
हिय-भंडार तजा क्यों तुमने,
जग ने क्यों दर्शन पाये ?

यह दिग्दर्शन ठीक नहीं है,
निज आकार मिटा दोगे,
सदा रहे आते जो क्षण क्षण
तो विश्वास नसा दोगे ।

क्यों अतीत का झगड़ा मोल
लिये सर पर तुम हो बैठे ?
अथवा प्रस्तुत कर्मकांड में
इतने गहरे क्यों पैठे ?

क्यों भविष्य की चिंता में
अपने को इतना लीन किया ?
अपने पैरों आप कुल्हाड़ी
मारी—दीन मलीन किया ।

दुख में सुख, पाते अशान्ति में
शान्ति, व्यथा में शुभ विश्राम,
भेद समझ पाते हो हिय का
केवल तुम ही अश्रु-ललाम !

दुख के सार, किन्तु धीरज के
सच्चे, मोहक, मधुमय तत्त्व—
इसी हेतु देता कवि तुमको
इतना है सम्मान, महत्त्व ।

शान्ति, धैर्य, संतोष-प्रदेशों
का तुम करते देशाटन,
आह ! उपस्थित कर देते हो
'प्रेमी' अद्भुत परिवर्तन ।

कितनी जल्दी रंग जमाते—
हर्ष जमा सकता क्या रंग ?
शीघ्र अश्रु मम ! विह्वल कर
ढीले कर देते हो सब अंग ।

स्वयं शान्त तू, अन्य बोलते
किन्तु अश्रु ! तुमको अवलोक,
असित दुःख से तू उपजा है
तो भी है कितना आलोक !

इतना चुप—जाने फिर कैसे
पहुँचा देता निज संदेश—
अश्रु ! अन्य हिय में कर लेता
है अपना तू स्वतः प्रवेश ।

यहाँ जन्मते लिये ध्येय कुछ
और-वहाँ पर किन्तु मनुष्य
इसे और का और समझते—
ठीक, महत् अंतर गुरु-शिष्य ।

कभी बनाते हो अपना सा,
तुम्हें देखता जो कोई,
कभी बनाते हो बेगाना,
मनुज बुद्धि इस पर रोई।

उन पाषाण-हियों को, जिनको
खड्ग, तीर या अस्त्र-प्रहार
नहीं चोट पहुँचा कर विचलित
कर सकते हैं किसी प्रकार।

पिघला देते उन्हें मोम सा
कर देते हो उनको नर्म,
अश्रु ! तुम्हारी लीला तुम ही
जानो—मैं समझूँ क्या मर्म।

कितने लघु हो निज शरीर से
किन्तु हृदय तव महत्, विशाल—
सित, ज्योतिर्मय, पुण्य-रूप हो,
शुचि, देवोपम, किन्तु कराल।

बाहर भीतर सदा एक से
निर्धन के हो धन अरु गर्व,
किसी भाँति भी नहीं पर्व से
हो कम—कहते तुमको सर्व।

स्त्री-गण के शस्त्र भयावह,
तव सहायता से सब काम
करवा लेती हैं वह सबसे—
व्यर्थ 'दीन' जन देते नाम ।

दर्शन में तो कितने कोमल,
किन्तु बड़े ही हो तुम दुष्ट
लगी बुझाने के बदले तुम
अग्नि और भी करते पुष्ट ।

कैसे भी हो, फिर अपने हो,
कोमल हो या क्रूर सही,
और शत्रु क्या, तव समुम्ख
झुकती है आँसू ! सर्व मही ॥

* * *

* होली के उपलक्ष में *

आया है नूतन वर्ष और
होवे जीवन का नव-विधान,
इसमें अतीत की घड़ियों का—
हो जावे शंका-समाधान ।

अपने छोटे से जग का अब
हो जावे मधुतर भव्य रूप,
जिसमें सब 'सुन्दर' ही होवे
मिट जाय असित सर्वस 'कुरूप' ।

मैं द्वार किसी के पहुँच सकूँ
अस्सीम विवश अरमान लिये
हिय में लेकर सद्भाव दिव्य,
मन में नाते अनजान लिये ।

इस प्रथम होलिका के अवसर मै
लिये सर्व उपहार रम्य,
कुछ रश्मि-राशि सा भाव-भार,
चिर-सत्य कल्पनायें अगम्य ।

तुम रूप-राशि, वरदे अनित्य,
विमला, अमला, कमला-स्वरूप,
तुम ज्योतिर्मय, रसमय, नवीन,
जग अतल, भयावह, असित कूप ।

आशा, बल, धन, पदवी अनूप,
पाओ जग में वरदान, मान,
हो तव 'भविष्य' शैय्या-प्रसून,
तुम हो नव-भावुकता-प्रमाण ।

तुमको आलिंगन करे देवि !
चिर-जीवित-सात्त्विकता महान,
भाग्योदय के उपलक्ष तुम्हारे
मानस मैं हो सुख-विहान ।

अंगीकृत हो यह आज प्रथम
प्रेमोपहार, आशीर्वाद,
'प्रेमी' की बरसे प्रेम-दृष्टि,
सस्मित-हिय का नीरव प्रसाद।

तुम धर्म-भीरु, करुणे-विमुग्ध,
तुम विश्व-मोहिनी, ज्ञानवान,
तुम बनो किसी का नव शृङ्गार
मुरलीधर की राधे समान ॥

* मैं *

विश्व की विभूति का न कोई हूँ निशान-पता
वेदना हो नायिका के हिय न समाया हूँ,

मानिनी की रूठ न वियोगी के हिये का शोक
ज्ञान का न कोष हूँ न जीवन की माया हूँ।

विद्या का न रूप हूँ न प्रेम की सुरीली तान
मैं न कभी सुख के समुद्र में नहाया हूँ,

कोयल की कूक हूँ न जग के गले का हार,
'प्रेमी' नटनागर-कृपा की एक छाया हूँ॥

सुप्त प्रतिभा हूँ, मैं विलुप्त मानगरिमा हूँ
हास मृदुता का और गुप्त उजियाला हूँ,

फेंकी सी पड़ी हूँ पुष्प-माला शुष्क मर्दित मैं
'प्रेमी' हूँ असारता का, जग से निराला हूँ।

भक्त की न माला हूँ, न लोचन उजाला हूँ
अमीर का दुशाला हूँ, न विषयी की हाला हूँ,

नीरस, कठोर, कडुवा सा, अभिलाष-हीन,
पात्र हूँ घृणा का मैं हलाहल का प्याला हूँ॥

चक्कर लगाता हुआ गोल गगनांगन में
'प्रेमी' मंजु मनों की नवीन धर्मशाला हूँ,

जिसके समीप जा बुझाते हैं हृदय-ताप
ऐसी सुख रूप में विशाल चित्र शाला हूँ।

धन धनिकों का हूँ न यौवन किशोरियों का
रसिकों के हेतु मैं न केलि का कसाला हूँ,

वैभव-विहारी का न कोमल गलीचा हूँ
घोर घहराता हुआ घाव तेज भाला हूँ॥

विनती विनीत सुनने में जिसे होता कष्ट
उन्हीं के लिये हैं कटु, नीरस, कठोर बैन,

देखने पड़े हैं आज लोचन सभी के तुमें
'प्रेमी' है न देखी कभी जिसने रसीली सैन।

व्यंग-बाण मारने को प्रस्तुत खड़े हैं सभी
विपति समुद्र से करे जो पार कोई है न

भटक रहा हूँ थका व्यस्त, ढूँढ़ता हूँ मार्ग
जगत अँधेरा दीप-आशा देख पाता मैं न॥

* * *

⁂ आकुल अन्तर से ⁂

[भयंकर रोग से पीड़ित होने पर जब आशा और निराशा की आँख-मिचौनी जीवन खेल रहा था तब स्वास्थ्य-लाभ के हेतु पर्वत-प्रदेश पर गया था और उसी समय यह कविता लिखी गई थी ।]

यह बात चित्त में लानी है—
'जीवन भी एक कहानी है' ।

था एक समय जब हँसी-खुशी
की तरल धार में बहते थे.
दुनिया अपनी थी हरी-भरी,
दुख हँसते हँसते सहते थे.

वह भरी जवानी के दिन थे,
वे पिये नशे में रहते थे,
'अहँ ! क्या परवाह हमें कल की'—
जब यह हम अल्हड़ कहते थे—
'अपना हिय विकसित, धानी है'—
पर अब वह बात पुरानी है ।

बेपरवाही से भरा हुआ
*'नलिनी' से रिश्ता टूट रहा,
अमृत-वर्षा करने वाली वह
+'उमा'-मिलन भी छूट रहा,
बालक ×'नवीन' की बाल-चपलता
का सुख कोई लूट रहा.
हा ! अब जीवन-पर्यन्त भाग्य
का पात्र हमारा फूट रहा;
यह बात-'वही' वरदानी है—
चिरपरिचित है, पहचानी है ।

हम पड़े अपाहिज लुञ्ज पुञ्ज,
कोई दे दे तो जल पी लें—
पर-मुख हम ताका करते हैं,
'आजादी का सुख हम भी लें'—

यह इच्छा होती है मन में,
हम चाक-गरेबाँ को भी लें—
इन बच्चों के हित यह होता
मन में कुछ थोड़ा सा जी लें.
अब तक हाँकी मनमानी है,
पर अब तो आस बिरानी है।

धन पास नहीं, बल पास नहीं
जीवन संकट में पड़ा हुआ.
है मृत्यु द्वार पर खड़ी हुई,
मैं जीवन-पथ पर अड़ा हुआ.
मैं थका हुआ वह हूँ योद्धा,
अपने जीवन भर लड़ा हुआ;
मैंने कब जाना सुख क्या है—
रोते रोते ही बड़ा हुआ.
अब योंही उमर बितानी है—
यह सुख है, और जवानी है !

चलना छूटा, फिरना छूटा,
हँसना छूटा, रस-रंग छुटा,
अपने कोई यों भी कब थे—
जो कुछ थे उनका संग छुटा,

घर-बार छुटा अपना फिर भी
दुख-सुख का हाय न जंग छुटा,
जो अपनी निधि थे ग्वाल-बाल,
वह अपना सच्चा 'अंग' छुटा.
यह यौवन की कुर्बानी है;
अपनी किस्मत लासानी है ।

हमने छोड़ा लखनऊ शहर,
हमने परदेस बसाया है,
जब दिल अपना हो बुझा हुआ
तब 'पर्वत' किसको भाया है,
तुम जिधर उठाओ आँख उधर
हरियाली ही हरियाली है,
पर हृदय हमारा है मरु-थल
अपनी उमंग तो खाली है,
अपना दिल पानी-पानी है
जब यह दुनिया ही फानी है।

इतने संकट पर भी रे मन !
ईश्वर से लगन नहीं लगती,
हम पाप भोगते ज्ञान-बुद्धि
फिर भी तो आह! नहीं जगती,

'मालिक' सच्चे को छोड़ मनुज
के आगे सदा गिड़गिड़ाए.
हम कितने मूर्ख बताओ तो,
यह बात चित्त में कब लाए;
वह ईश्वर औघड़-दानी है,
रखता कब अपना सानी है ।

अपना वपु, ठीक, हिमालय में,
पर मन घर ही में रहता है,
बल आता जाता किन्तु मानसिक
दुख तो 'प्रेमी' सहता है;
सुख चला गया, दुख आया है,
दुख जाकर सुख भी आयेगा,
जब बच्चे होंगे गोदी में—
वह दिन भी ईश्वर लायेगा;
तब तक 'धीरज' के 'मानी' हैं—
'आँसू की धार बहानी है' ॥

*—मेरा बड़ा पुत्र नलिनीनन्दन ७ वर्ष ।
+—मेरी कन्या उमा देवी ४ वर्ष ।
×—मेरा छोटा पुत्र नवीन नंदन २ वर्ष ।

* क्षयी *

साँस लेता मृतक
पड़ा है कौन खाट पर यह ?
हिलता है, डोलता है,
है परन्तु गया बीता
मुरदे से भी ।

जीवन असम्मान पूर्ण धारण करता है हाय—
यद्यपि वह बेमन से ।

ऐसा दुखी !
मृत्यु के समीप से करता वह दर्शन है—
नित्य वह मनाता है विह्वल हो
ईश्वर से
रोग में, कष्ट में, पीड़ा में—
मृत्यु की प्रतीक्षा है ।

काल को वह सादर सप्रेम देता आवाहन
ऐसे जीवन से ऊब ।

किन्तु मृत्यु
उस पर कठोर हो
मारती है तिल तिल, घुलाती है प्रति पल ।

ध्यान करता है नित्य
माता का, पिता का, पुत्र-पुत्री का, सुबंधुओं का
प्रेयसि के प्रेम-परिप्लावित आलिंगन का ।

आती धमाचौकड़ी
याद उसे बच्चों की ।

चुम्बन का, हास-परिहास पूर्ण सरस वार्तालाप का ।

अपने रंगीन भूत काल को विलोकता है ।

मन में मुसकाता है—
किन्तु दूसरे ही क्षण
दारुण परिस्थितियों का
ध्यान उसे आता है—
खिलने के पहले ही हिय मुरझाता है
उसका ।
सोचता अपनी दिनचर्या वह भग्न-हृदय—
क्या ?
खाँसता है खाँव-खाँव
रात भर, दिन भर;
रुधिर करता है वमन ।

क्षत-विक्षत फेफड़ों को दबाये हुए
हाथ से—
पीड़ा से पीड़ित हो
कौंखता है, कराहता है ।

रात्रि-पर्यन्त कर जागरण
गिनता है छत की वह धन्नियाँ ही बार-बार ।

रात है पहाड़ सी
काटे से कटती नहीं ।

थूक से, खखार से भरता है थूकदानी
सबके घृणा का पात्र
हाय क्षयी !
परवश।

मित्र और कुटुम्बी डरते हैं पास आने में
लोक-लज्जा-वश आते भी यदि पास हैं तो
मुँह में लगाये रूमाल
भागने की शीघ्रता ले
हिय में।

सब कुछ जानता है,
सब कुछ समझता है.
परन्तु व्यर्थ ।

बार बार अपने ही ऊपर झुँझलाता है।
वर्षों का रोगी है,
मरता है, न जीता है,
भोगने को कर्मफल।

स्वयं दुखी, दुखी मित्र, दुखी हैं कुटुम्बी सब,
है अनाथ।

पाई पाई का है वह आज मोहताज
क्यों कि
घर बार बेच कर
स्त्री के गहने और घर की सब वस्तुयें
अच्छी, अमूल्य और अप्राप्य,
लेकर कठोर ऋण
खाने को विष भी है पास नहीं कौड़ी एक
और यह राज-रोग।
चाहता है भोजन में घी, दूध, फल, फूल।

कहाँ तक कोई करे
उसकी सहायता।

बच्चे मुँह-मोड़ से,
पत्नी नित खोई खोई
खाने को तरसते हैं कण कण दाने का !

रोग की चिंता से
दारुण यह करुण दृश्य
देखता है, समझता है
और एक ठंडी साँस।
यही परवशता और अभाग्य का है मौन चिह्न।

किन्तु आशा—
तब भी न छोड़ती है उसके फटे दामन को—
और न स्वयं ही वह
उसका चाहता है त्याग,
कभी गृहस्थी को अपनी निहार कर।

उसका तो जीवन भी
उसके घर वालों को
घातक हो सकता है—
रोग दे सकता क्या है,
कहो, दे देता है
निन्नानबे प्रति शत।

बोलो वह क्या करे,
बोलो क्या करे नहीं,
ईश्वर ! परमात्मन्।

तू ही कर उचित जो समझे, तू उत्तम, ईश !
सब के हेतु—
एवमस्तु।

❋ मानव ❋

तुम सबल शक्ति, तुम हो महान्,
तुम जगत्-पिता के एक अंश, क्या इसका तुमको नहीं ज्ञान।

दबते को सभी दबावेंगे,
दुर्बल को सभी सतावेंगे,
फेंके को सब ठुकरावेंगे,
तुम दबो नहीं, दुर्बल मत हो, अपने को ईश्वर—निष्ठ मान।

जग है—ठोकर भी खाओगे,
यदि फिर भी बढ़ते जाओगे,
जग से निश्चय यश पाओगे,
रोते पर दुनियाँ रोती है, तुम हँसो, हँसेगा सब जहान।

दुख पड़ें—परन्तु मलीन नहीं,
ईश्वर रक्षक—तुम दीन नहीं,
तुम चिर-स्वतंत्र, आधीन नहीं,
तो बस तुम बढ़ते ही जाओ, जीवन के पथ को जान-जान।

अपनी सत्ता का ध्यान रहे,
दिल में हाँ-हाँ अरमान रहे,
सबजाय, किन्तु निज मान रहे,
नैराश्य-निशा भी बीतेगी, होगा 'प्रेमी' फिर सित विहान।
तुम सबल शक्ति, तुम हो महान॥

* विछोह पर *

चिर-दिनों का वास,
हृदय का आभास,
अमिय-सौख्य-प्रसंग,
प्रेम-प्लावित हास,
सब चला एक संग,
रंग में कर भंग ॥ १ ॥

दुखी-बंदित-कीर,
लौह हिय को चीर,
उड़ चला सब छोड़,
शेष ध्वनित-समीर,
सदा को मुँह मोड़,
सुखद-स्वप्न मरोड़ ॥ ७ ॥

निहित-हिय का मर्म,
पूर्व-संचित-कर्म,
आज सबका अंत,
मित्रता का धर्म,
सर्व हित जो संत,
आज तप्र वसंत ॥ ८ ॥

अब मिले विश्राम,
रहे पूर्ण-विराम,
दैन्य रूपी कीश,
अब न उसका काम,
रहे उन्नत शीश,
कृपा सर्वस ईश ॥ ४ ॥

घन-घटायें-घोर,
शीश पर कर शोर,
जल रहा अवशेष.
पर कहाँ अब मोर,
बाह्य-रूप-विशेष,
शान्ति अब न निमेष ॥ ५ ॥

किन्तु किसका दोष !
अतः किस पर रोष—
भाग्य हो जब सुप्त,
उचित ही संतोष.
अशुचिता हो लुप्त.
भूत-दुर्मम गुप्त ॥ ६ ॥

मिले सिंदुर-भाल,
गोद पूरे बाल,
सौख्य-परिमल-वेश.
स्नेह-रंजित-लाल,
दुःख रहे न लेश.
चिर-बिदा सब क्लेश ॥ ७ ॥

जीव भव का—स्वार्थ,
कुछ नहीं परमार्थ,
तुम रहो लवलीन,
सत्य, चारु, यथार्थ,
धर्म जल, तुम मीन,
हो कभी न मलीन ॥ ८ ॥

* तितीलिके *

मंजुलता की पूजा-वस्तु !
प्रकृति देवी की शुभ शृंगार !
पुष्पों की प्रतिबिम्ब !
मधुरता की दिग्-विजयी मूर्ति अपार !

इन्द्र-धनुष की क्षीण ज्योति !
आशा के हिय की देवि उदार !
सुन्दरता की सर्वस निधि !
एवं कोमलता की अवतार !

सुमनों की 'चंचलता' या
उड़ती फिरती है पल पल में ?
दिव्य रूप धारण करके
शोभित है तू पृथ्वीतल में ।

हो उदार दिखलाती है तू
सब पुष्पों से सम व्यवहार,
करती क्या शिक्षा प्रदान यह—
'कैसे करें सुजन जन प्यार' ?

छिद्रन्वेषी किन्तु तुझे नित
दोषारोपण करते हैं,
स्नेह-शिथिलता, अस्थिरता का
द्वेष शीश तव धरते हैं ।

किसने हे तितीलिके ! इतना
सुन्दर साज सजाया है,
रंग-बिरंगी सारी पहना
अद्भुत तव रूप बनाया है ?

जगतीतल के सुमनों की या
स्वयं 'पुष्प' है तू, बतला ?
चढ़ समीर की गोदी में तू
खिली हुई है हे सरला !

कवियों की सुकुमार भावना
के सम उड़ती फिरती तू ?
दुखी निराश जनों की या
भविष्य की आशा है तू ?

नन्हे से कोमल तन में
कितनी सुन्दरता कूट भरी,
वसुन्धरा के पुष्पों की तू
सुमन-ज्योति की स्वर-लहरी ।

नीरवता छितरा कर शीले !
नित अप्रकट भाषा में तू,
मग्न अलौकिक जग बतला
दे, किसके है चिंतन में तू ?

किस प्रदेश का हर्ष-सँदेश
सुनाती उड़ती-फिरती है ?
किस पर मुग्ध बता हो हो कर
थिरक-थिरक नित गिरती है ?

तेरे हिय का सानुराग तव
रंग प्रकट कर देता है,
तेरा दर्शन जड़-चेतन सब
का ही मन हर लेता है ।

पुष्पों से बढ़कर तुझसे है
शोभित माली का उद्यान,
किन्तु दैव-गति, है अपने ही
सुगुणों से तू चिर-अज्ञान ।

चूम-चूम कर कलियों कलियों
का रस मस्ती दिखलाती,
पल भर एक सुमन को चुम्बन
कर चट तू है उड़ जाती ।

है स्वभाव बालक सम तेरा—
हिय में अति आह्लाद अतीव,
खेल कूद में सदा गँवाती
अपना क्षणिक सुकोमल जीव ।

रंग-बिरंगे वस्त्रों से सज
बनी खिलाड़ी खेल रही,
भ्रमर, सुमन आदिक से हो
प्रफुल्ल सुख-भार कुलेल रही ।

या ईश्वर की रंग-हाट का
बतला एक 'नमूना' है,
जिसके बिना अटूट स्वर्ग का
वैभव 'प्रेमी' सूना है ।

अस्तु, भेट को दो शब्दों से
श्रद्धा-थाल सँजोता हूँ.
'वनदेवी ! स्वीकार भक्ति हो
मम'—कह कर चुप होता हूँ ।

जब तब माया की नन्ही सी
एक वस्तु इतनी मनहार.
केवल कहते बनता, नट नागर !
तव अद्भुत है व्यापार ॥

* * *

* मैं प्यासा हूँ *

मैं प्यासा था, मैं प्यासा हूँ.
मैं नीचे से ऊपर तक पीड़ित,
काटा और तराशा हूँ ।

इन तृष्णाओं का, इच्छाओं का.
आशाओं का अंत नहीं,
मै पतझड़ का अभ्यस्त, और
देखा है कभी बसंत नहीं.
कुछ सुख आये थे क्षण भर को.
जीवन भर वही रुलावेंगे,
वह बन कर दर्द समाये हैं,
रह-रह कर वह कलपावेंगे.
'दुर्भाग्य' खिलखिलाता है, उसके
कर का एक तमाशा हूँ ।

मैं जिस तट पर जाकर बैठा,
बस वहीं कगारा टूट पड़ा,
मैंने जिसको पुचकारा 'प्रेमी'
वह ही मुझ पर फूट पड़ा,
मैंने स्पर्श किया सोना, बस
वह मिट्टी का ढेर हुआ,
कैसे बतलाऊँ क्या से क्या यह
हा ! किस्मत का फेर हुआ,
मैं घुलता जाता हूँ प्रति क्षण
पानी में एक बताशा हूँ ।

मैं पानी देता हूँ तरु में, वह
और सूखता जाता है,
मैं जिसको निकट बुलाता हूँ
वह दूर भागता जाता है,
मैं सबकी सुधि में मरता हूँ, औ'
सब मुझको ठुकराते हैं,
मैं जला हुआ हूँ और जले पर
स्नेही नोन लगाते हैं,
मैं दुःखों का हूँ परम मित्र,
देखो प्रत्यक्ष निराशा हूँ ।

जग है मेरे प्रतिकूल, और,
मैं भी जग के अनुकूल नहीं,
मैं उसके हित हूँ व्यर्थ वस्तु,
यद्यपि मैं उसको शूल नहीं,
मैं गर्त्त बनाती मँझधारा,
मैं शान्त-नदी का कूल नहीं,
जो सुधर सके आगे जाकर
भाई ! मैं ऐसी भूल नहीं,
मैं सभी ओर से, सभी तरह से
केवल तोला-माशा हूँ ।

मैं जिसको धर्म समझता था,
जग उसको समझा दुराचार,
मैं जिसको समझ रहा 'सर्वस',
जग को उसमें कुछ नहीं सार,
मैंने दो जीभ नहीं पाई,
यह ही मेरा अभिशाप बड़ा,
मेरा 'आदर्श' संकुचित है (!)
औ' सभ्य जगत का माप बड़ा,
मैं ठोकर खाने आया
फेंके-जाने-वाला-पासा हूँ ।

स्मृति खींचा करती चित्र रात-दिन
रूठी हुई जवानी के,
जीवन की सब घटनाओं के.
उस बचपन की नादानी के.
यह समय विदाई का है—
ढीले अंग हुए चिर-मानी के.
कुछ पन्ने शेष रह गये हैं
जीवन की करुण-कहानी के,
मेरा हिय है विस्तृति समाधि मम
जीर्ण-शीर्ण अब खासा हूँ।

मै प्यासा था मैं प्यासा हूँ॥

——(०)——

※ निराश हृदय से ! ※

फिर होगा ज्योतिर्मय प्रभात,
फिर चिड़ियाँ चूँ-चूँ बोलेंगी बीतेगी 'प्रेमी' घोर रात।

शाखा टूटी गिर पत्र पड़े,
सूना करके खग-नीड़ उड़े,
फल, पुहुप, बीज, रस रहित खड़े,
चिंता क्या है, दिन आने दो पनपेगा फिर तरु क्षीण-गात।

रस रीता, प्याली सूख गई,
चिंता में निद्रा-भूख गई,
अपनी आशा फिर 'दूख' गई,
आने को है मधु-मास और फिर निर्झर होगा मधुर स्नात।

भाई ! तुम थे पथ गये भूल,
काँटे झेले, सब सहे शूल,
'ऊपर से जर्जर-सबल मूल'—
यह मत भूलो सिद्धान्त-और अस्थिर 'अभाग्य' की क्या विस्मान।

जो बीत गया, वह जाने दो,
जो आने को है, आने दो,
तुम 'वर्तमान' को 'माने' दो.
तुम अपने पथ पर डटे रहो जयमाल तुम्हारी सत्य-प्रान !

फिर होगा ज्योतिर्मय प्रभात ॥

※ चित्रकार के चित्र से ※

झूम रही हैं पादप गण की
गुम्फित अलकावलियां.
खिली जा रही हैं चट-चट
कर-कर के कलियाँ-कलियाँ ।

आलिंगन-हित क्या कहने तरु
कर फैला-फैला कर—
'अनुरंजित करते दिगंत को
आते प्रवर दिवाकर' ।

प्रकृति-पटल पर वन देवी की
है नीरव अभिलाषा.
'चित्रकार का चित्र'—यही है
चित्रकार की 'भाषा' ।

एकाकी ! सरिता-तट पर नित
ही हो आते-जाते,
नेत्र, हृदय, जिह्वा सब अपनी -
अपनी प्यास बुझाते ।

मृग ! नव अनुसंधान हेतु
निज छोटा हृदय छिपाये,
जल पीने या शोभा को
आँखों से पीने आये ?

मायामय! नभ बीच निबिड़तम
घन की मंजुल श्रेणी,
उस रहस्य-प्रतिमा की जैसे
गूँथ रही हो वेणी ।

हिय में लिये रहस्य-सँदेशा
बरबस भाव छिपाये,
कवि की कृति में चित्रकार के
मौन चित्र से आये ।

युगुल शक्ति है, युगुल लेखनी,
किन्तु एक ही छाया,
भाव-शृंखला मधुर एक ही
और एक ही माया ।

नीर-हृदय में उठी हिलोरें,
सौरभ उड़ता आया,
मलयानिल का मृदु झोंकों ने
तृण-तृण मस्त झुमाया ।

वनदेवी परिभेष नवल में
सरिता तट पर डोली,
श्यामा किसी गूढ़ डाली से
अपनी बोली बोली ।

बनमाला की, प्रकृति-स्थली
की भूधर की श्रेणी,
'प्रेमी' सत्यं-शिवं-सुंदरम
की सी मिली त्रिवेणी ॥

* साकी *

साकी ! एक इधर भी देखो !
तुम्हें सभी हैं एक समान,
हम भी पीने वालों में हैं—
इसका भी रख लेना ध्यान।

ओंठ रँगे हैं सबके हिय की
विकसित डाली-डाली है;
देखो, तुमही देखो, केवल
मेरा प्याला खाली है।

कितनी देर हो चुकी बैठ
कर में प्याला लिये हुए,
झूम रहे हैं सबही पीने-
वाले साकी ! पिये हुए।

कितनी और कराओगे तुम
घोर प्रतीक्षा—गुल्लाला—
भर दो कम से कम थोड़ी तो
अपने कर से मृदु हाला।

'लौटे कोई मधुशाला से
खाली नहीं'—अटल सिद्धान्त
था जब, तो क्यों तरसा-तरसा
कर करते हो मुझे अशान्त।

क्या बोले—'कितने ऐसे हैं
जिनको नहीं बुलाते हम,
तुम तो यहाँ तलक आये हो
इतना ही क्या है कुछ कम'।

केवल दया तुम्हारी है जो
मुझको यहाँ बुलाया है,
पर यह भी तो कुछ बतलाओ,
अब क्या मन में आया है ?

कही बात जिसने है कितनी
सच्चाई में पगी हुई—
नहीं छूटती है यह काफिर
'प्रेमी' मुँह की लगी हुई ।

या तो तुम्हें स्वाद देना था
मुझे नहीं इस हाला का,
दर्श कराना ही अनुचित था
इस रंगीनी बाला का ।

किन्तु दया कर दिया ज्ञान जब
तुमने—हाँ—गुल्लाला का,
क्यों पट बंद कर रहे हो तुम
बोलो फिर मधुशाला का ?

क्या कहते हो-'धीरज'—तुमने
बात खूब ही टाली है,
हाय ! सुराही तो देखो
आधी से ज्यादा खाली है ।

बैठे इतने पीने वाले—
कहीं बीच में हुई समाप्त—
तुम्हीं बताओ तब क्या होगी
एक बूँद भी मुझको प्राप्त ?

भरे हुए हों खुम लाखों ही,
उठे हुए हों लाखों जाम,
मुझे नहीं यदि थोड़ी सी भी—
तो क्या निकला मेरा काम।

लौट गया यदि तेरे दर से
भग्न हृदय मैं लिए हुए—
दर्द दबाये अन्तस्थल में—
मुँह की जिह्वा सिए हुए।

दिल कहता है, 'नहीं मिलेगी',
आँख दिखाती 'पैमाना',
आशा कहती है 'ठहरो तो',
साकी करता बेगाना।

अच्छा तो जाते हैं साकी।
तेरी खुशी—रहे तू शाद,
जमघट पीने वालों का हो—
रहे सदा महफिल आबाद।

फिर भी आयेगे हम साकी!
फिर मागेगे वही शराब,
चस्का डाल दिया तूने—
जायँ कहाँ—अच्छा—आदाब!

* सुख *

गायन का अनुरोध करो मत.
कंटकमय मम जीवन-लक्ष.
हृदयहीन-सी हूँ दुखियारी
और वास्तविकता प्रत्यक्ष।

उजड़ी हो जब सौख्य-वाटिका,
वैभव हो दुर्भाग्य-विपन्न.
तब मम रोदन ही गायन हो,
सुखद, शांतिप्रद, भावोत्पन्न।

रीती हो जीवन की प्याली
आशा की मृदु हाला से।
असित-विलोड़ित हो नश्वरता
दुर्दिन-पोहित-माला से।

गायन क्या है ? हिय का अनुदिन
उद्वेलित उल्लासोत्कर्ष।
भाव-मर्मान्वित नीरवता का
शब्दों में प्रगटित हिय-हर्ष।

रोदन क्या है ? बुझे हुए
हृत्तल का भीषण हाहाकार
नश्वरजग का करुणाप्लावित
दृश्य, कष्ट-प्रद सौख्य विकार।

भव के इस विस्तृत दुकूल में
जिसका कोई ओर न छोर।
सम्भव कैसे हो सकता है
आत्म-समर्पित आत्म-विभोर ?

व्यस्त-थस्त हों जब हिय-वीणा
ही के मंजुल तार महान्,
होय कहाँ से बाह्य राग का।
अन्तस्तल से स्वर-सन्धान ?

तो भी गाने को बैठी हूँ
गायन, स्वर अरु ताल विहीन,
फल-इच्छा से दूर, किन्तु,
होती हूँ फिर भी निज में लीन।

कण ही है कारण भूधर के
गौरव का प्रस्तुत अस्तित्व,
मैं हूँ क्षुद्र अवश्य किन्तु,
अब हो समर्थ मम, देव कवित्व।

* रुदन गान *

यहाँ अस्थिर वास पंछी !
यह न तव कोटर न 'प्रेमी',
सुमन, फल, न सुवास पंछी !

समझ अपना जिसे निज को मोह-बंधन में बँधाये,
भावना तक भित्ति बालू सी कहीं यह गिर न जाये.
दुख-प्रभंजन के स्वर्गों में,
उड़ न जाये हास पंछी !

रात भर विश्राम कर ले दूर जाना है सवेरे,
अश्रु के तर्पण बनेंगे आज के स्वप्निल बसेरे,
प्रलय तक चलते रहेंगे,
विश्व के उच्छ्वास पंछी !

विशद और अनन्त पथ पर दूर जाना है प्रवासी !
और एकाकी ! जहाँ पर शून्य ही है, पूर्णमासी,
जहाँ पर तू भी न होगा,
और अपने पास पंछी !

नियति फिरती नित्य कटुतम काल को उर में छिपा कर,
हाय फिर भी भूलता था व्यर्थ किससे लौ लगा कर,
श्वास अन्तिम ही यहाँ का
समझ तू मधुमास पंछी !

यह वियोग अनित्य ही चिर-सत्य, चिर-संयोग साथी !
जन्म लेकर यातनायें ही हमारा भोग साथी !
कौन जाने मृत्यु जग का,
हास या उल्लास पंछी !

बांधते जिसको रहे हम प्राण-प्रण से राग टूटा,
या कहो आवागमन का एक लघु अनुराग छूटा,

जीव का सर्वेश से बीता.
चलो बनवास पंछी !

छुट गई जग की व्यथायें, खुला माया-मोह-क्रन्दन,
आ गया क्रम से सर्व ! आरोह से अवरोह बन्धन.
यही युग युगका समझ पगले !
न, चरम विकास पंछी !

यहाँ अस्थिर वास पंछी :

※ पथिक से ※

देखो पथिक न तुम घबराना,
यह जग ही दुखमय तब
इसके दुख से क्या भय पाना।

ऊँचा-नीचा, कँकरीला
पथरीला पथ अनजाना,
है अवश्य, पर बच कर
चलना, कहीं न ठोकर खाना।

गह्वर गर्त भयावह मग में
यदि तुम गिर भी जाना,
ठोकर खाकर सँभल-सँभल
कर आगे पैर बढ़ाना।

मन कहता हूँ अनुभव के
बल राही ! मैंने जाना,
फूँक फूँक कर चुपके—
चुपके अच्छा कदम उठाना।

तुम निजत्व का गर्व न करना
हरि को मत बिसराना,
कृष्णार्पण कर बुद्धि, शक्ति
कर्तव्य-मार्ग अपनाना,

रंग-बिरंगे दृश्य मिलेंगे
मग में मत बिरमाना,
उन्हें देखना जी भर के औ
फिर आगे बढ़ जाना।

रुकना मत तुम ध्येय तलक
जब तक फिर पहुँच न जाना,
अपनी मंजिल पाकर तुम
चाहे जितना सुस्ताना।

बोदे बन कर डर कर अपनी
कहीं न हँसी कराना
बढ़े तो बढ़े, आगे बढ़ कर
फिर क्या पीठ दिखाना।

भाई! करना ठीक नहीं है
हीला, ढील, बहाना
तुम पुरखों से सीख चुके
लोहे के चने चबाना।

हँसना रोने के अवसर पर
ही जौहर मर्दाना,
असित घटा सर पर मँडराये
तब तुम तान उड़ाना।

अर्थ हीन क्या भटक-भटक
कर इधर-उधर को धाना,
बैठे ही बैठे क्या देते
व्यर्थ भाग्य को ताना

झाड़ी औ झँखार चुभेंगे
कंटक पथ में नाना,

धारें उधर प्रकृति कितना
नयनाभिराम है बाना ।

आर्य-युवक अनुचित तुमको
कायर अरु भीरु कहाना,
'प्रेमी' यही सफलता है,
काँटों का हार बनाना ।

——(०)——

* मातृ-हीन *

मै जग का प्राणी हीन-दीन
मैं चिर-अनाथ, मैं मातृ हीन।

जग में अमृत से भी उत्तम
वह हाय छिना माँ का दुलार,
तन में जो जीवन भरती थी
वह लुप्त हो गई दुग्ध धार,
मैं क्या जानू वात्सल्यमयी
माँ की गोदी का सुखद स्वाद,
मैंने बसंत में सदा सुना
रूखे पतझड़ का भीम नाद,
उपयेथ जननि का है कहीं न,
मैं चिर-अनाथ,- मैं मातृ-हीन।

मैं भूल गया शिशु के कपोल पर
माँ के कर की मृदु थपकी.
माता की ममता में डूबी
आखों की कुछ बूँदें—टपकीं.
माँ के नेत्रों में अपने शिशु का
स्नेह-सिंधु लहराता सा.
करुणा-परिप्लावित माँ का हृत्तल
बार बार भर आता सा.
उन मृदु स्मृतियों से हा विहीन,
मैं चिर अनाथ, मैं मातृ-हीन।

जननी का लाड़-दुलार-पूर्ण
गाढ़लिंगन, वरदा चुम्बन
शिशु को जो माँ से मिलता
रहता है वह सचा अपना पन.
इसको क्या मैंने चखा कभी
मुझको तो इसकी याद नहीं,
माँ की ममता से बढ़ कर जग
में कोई उत्तम स्वाद नहीं,
मुझसे अभाग्य कब है नवीन,
मैं चिर-अनाथ, मैं मातृ-हीन।

माँ वह है जो अपने शिशु पर
अपना सर्वस्व लुटाती है.
शिशु के संकट ही को निहार
अबला दुर्गा बन जाती है.
चिड़ियाँ ज्यों निज शिशु-संकट लख
नित पंखों-मध्य छिपाती है,
माता निजता को लोप स्वयं
'प्रेमी' शिशुमय हो जाती है,
शिशु, माता, ज्यों जल और मीन,
मैं चिर अनाथ, मैं मातृ हीन।

* ओ निठुर *

बिज्जु-घटा सी क्षणिक शांति
आशा की हल्की सी झाँकी,
पानी का बुदबुदा मेरा सुख,
धीरजता तिरछी बाँकी

अरे प्रपंची, दुनी ! दीन पे
छाया तम-अविवेक,

बुद्धि शून्य, नैराश्य रूप, मम
पागल की सी टेक ।

सन्ध्या को सूर्यास्त, प्रात को
चन्द्र-ह्रास, तारक गण हीन,
जीवन में या पड़ा ग्रहण, सब
अंधकार, मम दृष्टि मलीन,

करुणा की कर वृष्टि हरा हो
जाये फिर से ज्ञान,
मेरे इस उजड़े से बन
में हो सिंचित मुसकान ।

क्यों करती आश्चर्य ? घिरी चहुँ
ओर निराशा की बदली,
थाह लगा जो सके लगा तू
हिय-तल की गम्भीर-तली ।

अरे देव ! तू ही पथ दिखला
कर दे अन्त विनाश,
हृदय बदल दे, नये भाव
भर पैदा कर सुख-वास ।
मित्र मेरी लो अनुभव-दीपक
क्यों बनतीं भोली अनजान

हृदय भीत पर उड़े पताका
करो प्रेम भिक्षा का दान।

निर्मल हिया मुकुर सा लेकर
फिरतीं तुम स्वच्छन्द
चोर यहाँ है धर्म ! मोह
सा 'प्रेमी' अन्तर्द्वन्द्व।

※ बलिदान करो ※

निज अतीत अनुसंधान करो.
देशार्थ आत्म - बलिदान करो.

तुम आन-वीर.
तुम मान-वीर.
तुम सुभारतीय महान वीर.
तुम विपद्-ग्रस्त का त्राण करो.
देशार्थ आत्म - बलिदान करो।

तुम आर्य वंश,
ऋषि-वर्ग-अंश
तुमने मारे जो थे नृशंस,
सारे जग का कल्याण करो,
देशार्थ आत्म-बलिदान करो।

है समय कठिन,
सुख, भाग्य मलिन,
जब हैं जन धान्य तथा धनबिन
तब मितव्यता की शान करो,
देशार्थ आत्म-बलिदान करो।

अब तुम गँवार,
निज पन बिसार,
जोसिंह हाय वह अब सियार
निज करुण दशा पर ध्यान करो,
देशार्थ आत्म-बलिदान करो।

तुम शत्रुञ्जय,
तुम मृत्युञ्जय,
रिपु-दमन ! अभय !! तुमको क्या भय
जागो, बढ़ चलो, पयान करो,
देशार्थ आत्म-बलिदान करो।

तुम आदि-शिष्ठ,
जग के वशिष्ठ;
तुम रहे सदा कर्तव्य-निष्ठ
औदार्य, दान निज पान करो,
देशार्थ आत्म बलिदान करो।

तुम गुणागार,
तुम कलाकार
तुम लिए धर्म का रहे भार,
तुम पतितों का उत्थान करो,
देशार्थ आत्म - बलिदान करो।

* * *

* चिर-विदा *

तुम आईं उल्का-पात सदृश
अरु चली गईं आँधी सी क्यों ?

इस निष्ठुर जग में सन्नाटा
इसका पत्ता तक हिला नहीं.
मानव की शक्ति नगण्य और
परिमित सी क्यों, बाँधी सी क्यों ?

तुम थीं बसंत की नव कोयल
गिर पड़ीं अरे ज्यों शुष्क-पात,
तुम सुंदर, सुरभित नवल कुसुम
फिर ऐसा क्यों द्रावक निपात:
गिर पड़ीं दुखी के अश्रु सदृश
या करुणा जग हो जाय लोप,
हाँ. तुम तो बंधन-मुक्त हुईं
जग पर अभाग्य का असित कोप,
प्रति रोम रोम का कौन बताओ
'प्रेमी' छाला छिला नहीं ?

तुम प्रातः की ऊषा समान
ज्योतिर्मय अरु नयनाभिराम.
तुम वर्षा की नव हरियाली सम
सुखद, शांत दायक, ललाम,
वर्णनातीत तुम मृदुल लता सी
श्रान्त-पथिक की लघु विराम.
इस अशुभ जगत के अनुपयुक्त
सम भक्तों की बैकुण्ठ धाम.
जो किसी भाँति भी चला जाय
यह ऐसा वैसा गिला नहीं।

तव कृतियाँ देवी ! अमर यहाँ
बरदान तुम्हारे अमर यहाँ.
ओ मानवता की मञ्जु मूर्ति !
अरमान तुम्हारे अमर यहाँ,
पा कर तव स्मृति के दुखद चिह्न
जीवन की ज्योति जगायेंगे,
नीलम की प्याली ढुलका कर
मुक्ता-मणि-हार चढ़ायेंगे;
पर तुम्हें न इसकी चाह कमल
सर सूख गया तू खिला नहीं ।

तुम वर्षा ऋतु की प्रथम श्याम
घन घोर घटा गंभीर, आद्र
तुम फूटी थीं रवि-किरण सदृश
था मेघाच्छादित मास भाद्र,
तुम कहाँ और प्रातः समीर की
मंथर गति सी गई कौन ?
तुम हिय में भीषण हाहाकार
मचा जिह्वा कर मंत्र-मौन;
अनजान नियति की परिभाषा
उलझी सी क्यों, राँधी सी क्यों ?

रह गये पूछते ही हम, पर
उत्तर अब तक तो मिला नहीं,
तुम आईं उल्का—पात सदृश
अरु चली गईं आँधी सी क्यों ?

मानव की शक्ति नगण्य और
परिमित सी क्यों, बाँधी सी क्यों ?

हमारी प्रकाशित कुछ उपयोगी पुस्तकें

१	हिंदी-सेवी-संसार	५)
२	विश्व-संस्कृति का विकास	१।)
३	रहस्यवाद और हिंदी कविता	१॥)
४	गबन : एक अध्ययन	॥।=)
५	स्कंदगुप्त : एक अध्ययन	१।)
६	अजात शत्रु : एक अध्ययन	१।)
७	नंददास-कृत 'भँवर-गीत' सटीक	।=)
८	प्रेरणा—पाँच एकांकी	॥।)
९	हिंदी रचना और उसके अंग	२)
१०	चन्द्रगुप्त : एक अध्ययन	१।)
११	गोदान : एक अध्ययन	१॥)
१२	निर्मला : एक अध्ययन	॥।)
१३	संकल्प—तीन एकांकी	१।)
१४	हृदय-ध्वनि—कविता	१।)

विद्या मंदिर, चौक, लखनऊ।